E-ISSN: 2664-603X
P-ISSN: 2664-6021
IJPSG 2023; 5(2): 157-158
www.journalofpoliticalscience.com
Received: 17-08-2023
Accepted: 20-09-2023

सुभाष चन्द्र सामन्त
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड, भारत

Corresponding Author:
सुभाष चन्द्र सामन्त
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड, भारत

पूँजीवाद और भारत में समाजवाद के लक्ष्य

सुभाष चन्द्र सामन्त

DOI: https://doi.org/10.33545/26646021.2023.v5.i2c.274

सारांश
पूँजीवादी व्यवस्था ने पूरी दुनिया में गरीबी मिटाने का सपना दिखाया, कुछ सीमा तक यह सफल भी रहा। परन्तु इस व्यवस्था ने दुनियाभर में आर्थिक असंतुलन को जन्म दिया है। किसी भी व्यवस्था की प्राथमिक लक्ष्य बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है। परन्तु तमाम दावों के बावजूद यह व्यवस्था भूख के प्रति भय को समाप्त नहीं कर पाया। पेट भरने के लिए दुनियाभर से पलायन जारी है। वैश्वीकरण ने दुनिया भर में कृत्रिम विकास का डंका बजाया है, हर तरफ, हर दिन विकास की बातें होती है, मगर यह विकास तब तक अधूरा समझा जाएगा, जब तक उसका लाभ हर जगह और हर किसी तक नहीं पहुँचता।
वैश्विक प्रतिस्पर्धा वाले माहौल ने जीवन के नैसर्गिक सुखों को भी छीन लिया है। प्रकृति के साथ उचित संतुलन नहीं हो पाने के कारण प्रदूषित वातावरण में रोगग्रस्त जीवन जीने के लिए विवश है। आखिर ऐसी केन्द्रीकृत व्यवस्था की क्या उपयोगिता रह गई है जो न उचित शिक्षा, स्वास्थ्य और रोटी उपलब्ध करा सकती है न ही एक शांतिपूर्ण विश्व की गारंटी ही दे सकती है। वैश्विक उथल–पुथल के बीच भारत को भी एक वैकल्पिक व्यवस्था के बारे में विचार करने की जरूरत है। इसमें लोहिया का समाजवाद, गाँधी के ग्राम–स्वराज एवं औद्योगीकरण का एक मिला–जुला मॉडल वैकल्कि मॉडल साबित हो सकता है।''

कूटशब्द : पूँजीवाद, समाजवाद, वैश्वीकरण, आर्थिक तत्व, असमानता।

प्रस्तावना
पूँजीवाद एक ऐसी व्यवस्था है, जिसने एक तरफ करोड़ो लोगों के जीवन को बेहतर बनाने में योगदान दिया है तो दूसरी तरफ करोड़ों लोगों को इसके दुष्परिणामों का सामना करना पड़ रहा है। सोवियत संघ के विघटन के बाद पूँजीवाद और शक्तिशाली होकर उभरा। पूँजीवादी व्यवस्था ने दावा किया था कि इससे दुनिया की गरीबी दूर हो जाएगी लेकिन ऐसा नहीं हो पाया। उदारीकरण और निजीकरण से आर्थिक क्षेत्रों में नियमों में बदलाव के कारण दुनिया के बाजार सभी के लिए खोल दिए गए। जिसके कारण पूँजीवादी देशों ने भरपूर विकास किया, परन्तु दुनिया के अधिकतर देश इसके फायदों से वंचित रह गए। पूँजीवादी देशों ने गरीब और विकासशील देशों के प्राकृतिक संसाधनों का भरपूर दोहन किया, जिसमें नव–साम्राज्यवाद की झलक दिखायी देती है।
आधुनिक अर्थव्यवस्था ने मनुष्य के जीवन को जटिल बना दिया है। वैश्वीकरण ने जीवन के समस्त पहलू को आर्थिक तत्व पर केन्द्रित कर दिया है। जीवन के अन्य पहलू गौण हो गए है। आर्थिक तत्व पर केन्दित करने से अच्छा बंगला, गाड़ी और विलासितापूर्ण जीवन के लिए दबाव बढ़ रहा है। बढ़ती प्रतिस्पर्धा ने जीवन को निरस कर दिया है। हम सभी एक ऐसी अंधी दौड़ में शामिल हो गए है, जिसमें कहाँ पहुँचना है, यह पता ही नहीं है। पैसा ही सभी रिश्तों और जीवन चक्र के केन्द्र में स्थापित हो गया है। निम्न दर्जे के व्यक्ति के लिए गरिमापूर्ण जीवन जीना मुश्किल हो गया है। मानव मशीन बन गया है और मशीन में कोई संवेदना नहीं होती है। कर्मचारियों को कम्पनियों से मिलने वाले वेतन का करीब पूरा का पूरा हिस्सा बच्चों की फीस, प्रदूषित शहरों में स्वास्थ्य, किराये का मकान या मकान का ईएमआइ में खर्च होता है। ऐसी व्यवस्था बनी हुई है कि महानगरों में एक लाख रूपये से कम वेतन पाने वाले लोग अपनी पूरी नौकरी की जिन्दगी ईएमआई में बिताते हैं और उनके वेतन का छोटा–सा हिस्सा खाने पर खर्च होता है। उसी के थोड़ा महँगा होते ही घर कर पूरा बजट बिगड़ जाता है। ऐसे में बार–बार यह सोचने के लिए मजबूर होना पड़ता है कि इस पूँजीवादी व्यवस्था ने आखिर हमें दिया क्या है?[1]
वैश्वीकरण ने क्षेत्रीय विषमता को बढ़ावा दिया है, जिसके कारण अनियंत्रित और बेतरतीब विकास ने अनेक समस्याएँ उत्पन्न की है। निरंतर यह दावा किया जा रहा है कि भारत आर्थिक महाशक्ति बनने की राह पर है, यह कुछ सीमा तक सच भी है। परन्तु प्रति व्यक्ति आय के मामले में असली तस्वीर कुछ और ही बयां करती है।

केवल उच्च आर्थिक वृद्धि ही किसी राष्ट्र के विकास का पैमाना नहीं हो सकता। बुनियादी आवश्यकताओं तक सभी लोगों की पहुँच ज्यादा महत्वपूर्ण है। वैश्वीकरण से समृद्धि आयी है, विकास दर में वृद्धि हुई है, परन्तु इसकी समृद्धि की पहुँच अभी भी बहुत सीमित लोगों तक है। असंगठित, लघु और अनौपचारिक उद्यम से जुड़े लोग संकट में है। हाल के वर्षों में भारत में जो तीव्र आर्थिक विकास हुआ है। उसका मुख्य लाभ शहरों के अपेक्षाकृत समृद्ध तबकों की ही मिला है। इसी तरह प्रति व्यक्ति आय के आँकड़े बताते हैं कि आय उच्च तबके में केन्द्रित हो रही है।[2]

देश की अर्थव्यवस्था का विकास मानव संसाधन को उचित काम पर लगाए जाने और प्राकृतिक संसाधनों के उचित इस्तेमाल पर निर्भर है। जो कि समाजवादी व्यवस्था में ही संभव है। बड़े उद्यमों के साथ–साथ छोटे व्यवसायों के योगदान की पहचान और छोटे उद्यमियों के लिए निरंतर खतरा उत्पन्न होना, असीमित असमानता को जन्म देगा, जो समग्र विकास के लक्ष्यों के लिए नुकसानदेह है। समावेशी विकास के लिए सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योगों का विकास अति आवश्यक है।

अमेरिका में डॉक्टर रोगी अनुपात कई गरीब देशों के अनुपात से कम है। पिछले दशक में उस देश में स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली का निजीकरण करने का जो उन्माद था, वह अब बेहद गलत प्रतीत होता है। यूरोप के अन्य उन्नत पूँजीवादी देशों की भी यही दुर्दशा है। ये सब स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली को लाभ केन्द्रित बाजार ताकतों की सनक और चाहत के हवाले करने के अपरिहार्य परिणाम है। जब केवल लाभ ही स्वास्थ्य देखभाल की एकमात्र चिंता बन जाता है तो सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली की अवधारणा एक असहाय दुर्घटना बन जाती है।[3]

कमोवेश भारत में भी स्वास्थ्य और शिक्षा व्यवस्था की यही स्थिति है। भूमंडलीकरण के इस दौर में भारतीय समाज में शिक्षा व्यवस्था अमीर और गरीब के बीच भेद को और भी स्पष्ट करती है। सबको समान शिक्षा का लक्ष्य बहुत पीछे छूट गया है। अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूल प्राइवेट हाथों में है और वे शिक्षा के जरिये व्यापार कर रहे हैं। अमीर परिवार के बच्चें इन स्कूलों में पढ़कर वैज्ञानिक, इंजीनियर, डॉक्टर या मैनेजर बनने का सपना लिए बड़े हो रहे हैं। वहीं गरीब बच्चों के लिए नगर निगम और राज्य सरकार के वे स्कूल हैं, जिनमें साधनों का घोर अभाव है। यहाँ तक कि इनमें पर्याप्त शिक्षक भी नहीं है। इन स्कूलों में जाने वाले बच्चे किसी तरह साक्षर भले ही हो जाएँ मगर इनके सामने कोई सपना नहीं है।[4]

देश की बड़ी आबादी अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संघर्ष कर रही है। उस परिस्थिति में निजीकरण को बढ़ावा देना और पूँजीवादी विकास मॉडल को अपनाना आशानुरूप परिणाम देने वाला साबित नहीं हो रहा है। अतः देश में एक ऐसी विकास मॉडल की आवश्यकता है, जिसमें समृद्धि के साथ कम से कम विषमता उत्पन्न हो। 21वीं सदी में भी भी कुछ लोग इतने बेबस और तिरस्कृत हैं कि अभी भी उन्हें हाथ से मैला ढोने जैसी अमानवीय व अपमान–जनक कार्य करने पड़ते हैं। सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय द्वारा प्राप्त आँकड़े शर्मसार करनेवाले हैं और चिंताजनक भी। देश के लगभग एक तिहाई जिलों में हाथ से मैला साफ करने की प्रथा अभी भी जारी है।[5]

जहाँ तक आर्थिक आयाम की बात है भारत में समता के सिद्धातों का सबसे खराब उल्लंघन यह नहीं है कि धनी तथा महाधनी वर्ग के पास बेहिसाब पैसा है, बल्कि यह है कि एक बहुत बड़ी आबादी अभी भी सम्मानजनक जीवन जीने के लिए रोटी कपड़ा, मकान, सफाई, स्वास्थ्य सेवा और बच्चों के लिए स्कूल सरीखे बुनियादी सुविधाओं से भी वंचित है। व्यापक अभावग्रस्तता की इस पृष्ठभूमि में अमीरों की समृद्धि खासतौर से एक विकृति लगती है। वास्तव में चीन में आर्थिक विसमता भारत में व्याप्त आर्थिक विषमता से कम नहीं है, लेकिन असली फर्क इस तथ्य के कारण पड़ता है कि भारत में गरीब लोग जिस तरह से बुनियादी सुविधाओं से वंचित हैं, इस तरह चीन के लोग वंचित नहीं है।[6]

निष्कर्ष

हमें एक ऐसी मजबूत वैश्विक सामाजिक संरचना बनाने की आवश्यकता है जिसमें मानव और प्रकृति के बीच उचित तालमेल बनी रहे। पारिवारिक एवं सामाजिक संरचना में बदलाव से चुनौती बढ़ी है। डिप्रेशन जैसी नई रोग ने समाज में दस्तक दी है। मनुष्य के अंदर से संवेदनाएँ कमजोर हो रही हैं और वह मशीनीकृत यंत्र की भाँति व्यवहार करने लगा है। जीवन के अंतिम लक्ष्य के रूप में केवल प्रतिस्पर्धा और पैसा ने जीवन को संकीर्ण बना दिया है। सार्वजनिक शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे क्षेत्र में आधारभूत संरचना पर निवेश बढ़ाने की आवश्यकता है। साथ ही निजी शिक्षा और स्वास्थ्य प्रणाली में मनमानी लूट पर सख्त नियंत्रण रखना जरूरी है। हम अभी भी एक ऐसे दौर में जी रहे हैं। जहाँ प्रत्येक शहर के सड़कों पर हजारों की संख्या में मजदूर काम की तलाश में घंटों इंतिजार करते पाए जाते हैं। ग्रामीण और आदिवासी महिलाएँ अभी भी दातुन, पत्तल और अन्य वनोत्पाद पर जीविकोपार्जन के लिए मजबूर है। जीवन के केन्द्र में आर्थिक तत्व का महत्व जब से बढ़ा है। सामाजिक संरचना में आपसी सहयोग की भावना कमजोर हुई है। समाजवादियों ने हमेशा से एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहा है, जिसमें लोग एक–दूसरे को एक मानव परिवार का सदस्य समझें एक ऐसा समाज जिसमें हम यह स्वीकार करते हो कि दूसरों का कल्याण हमसे जुड़ा है। यह मानव, प्रेम और भाईचारा की दुनिया है। समाजवाद एक बहुआयामी जीवन उपलब्ध कराता है।

संदर्भ

1. सत्येन्द्र प्रताप सिंह, 2023, जाति का चक्रव्यूह और आरक्षण, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, पृ.सं. 232
2. ज्यां द्रेज और अमर्त्य सेन, 2020 (पाँचवा संस्करण), भारत और उसके विरोधाभास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 221
3. https://fronttine-thehindu-com.translate.googlcover-story/article31510435.scs? x tr sl=in&x tr tl=hi& x tr hl=hi&xtr pto=tc
4. अभय कुमार दुबे, 2003, भारत की भूमंडीकरण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं. 306
5. प्रभात खबर, राँची संस्करण, 2/08/2023
6. ज्यां द्रेज और अमर्त्य सेन, पूर्वोक्त, पृ.सं. 222